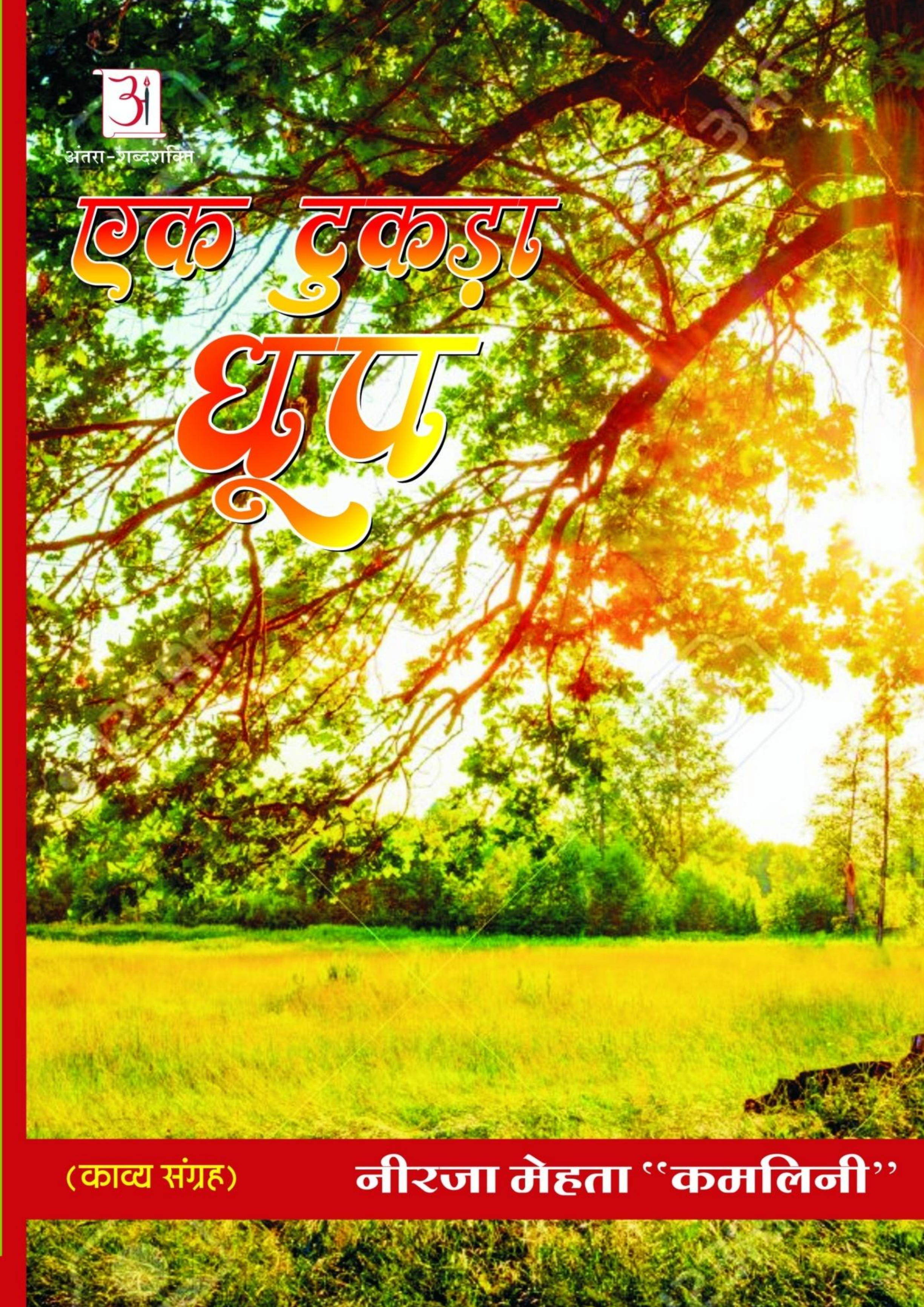
अंतरा-शब्दशक्ति
एक टुकड़ा धूप
(काव्य संग्रह)
नीरजा मेहता "कमलिनी"

एक टुकड़ा धूप

(काव्य संग्रह)

नीरजा मेहता 'कमलिनी'

अन्तरा शब्द शक्ति प्रकाशन

इंदौर,मध्यप्रदेश

ISBN- 978-81-937811-5-9

अन्तरा शब्दशक्ति प्रकाशन

कार्यालयनेहरु चौक वारासिवनी १५ :,जिला बालाघाट ४८१३३१ (प्र.म)

शाखा२०७-एस :, नवीन भवन, इंदौर प्रेस क्लब परिसर, इंदौर ४५२००१ (.प्र.म)

दूरभाष९४२४७६५२५९ मो २५३१५९-०७६३३ (कार्या) :

अणुडाक -antrashabshakti@gmail.com

अंतरताना- www.antrashabdshakti.com

प्रथम संस्करण २०१८ © नीरजा मेहता 'कमलिनी'

मूल्य: ४०.०० रुपये

आवरण चित्र : संदीप सोनी, वारासिवनी

मुद्रक- शैलू कम्प्यूटर्स, वारासिवनी

'Ek Tukda Dhup' by 'Neerja Mehta 'Kamlini''

वैधानिक चेतावनी : इस पुस्तक का सर्वाधिकार सुरक्षित है | लेखक की लिखित अनुमति के बिना इसके किसी भी अंश को फोटोकापी एवं रिकार्डिंग सहित इलेक्ट्रोनिक अथवा मशीनी किसी भी माध्यम से अथवा संग्रहण और पुनर्प्रयोग की प्रणाली द्वारा किसी भी रूप में पुरुत्पार्दित अथवा संचारित प्रसारित नहीं किया जा सकता हैं |प्रस्तृत पुस्तक की समस्त रचनाएँ लेखक द्वारा अन्तरा शब्द शक्ति प्रकाशन को प्रेषित की गई हैं | अत :प्रत्येक रचना की मौलिकता के किसी भी दावे हेतु प्रत्येक लेखक जिम्मेदार हैं| प्रस्तुत पुस्तक के घटनाक्रम पात्र ,भाषाशैली एवं स्थान सभी लखक की कल्पना हैं | किसी भी प्रकार के वाद-विवाद के लिए प्रकाशक का सहमत होना अनिवार्य नहीं हैं|

एक टुकड़ा धूप

प्रिय पाठकों,

हमारे जीवन में कई बार ऐसे मोड़, ऐसे क्षण, ऐसे अवसर आ जाते हैं जब हम बिल्कुल अकेले पड़ जाते हैं, मन भटकने लगता है, अजीब सी कश्मकश में घिर जाते हैं उस समय हमको अकेलापन महसूस होता है। तब हमको एक ऐसे हाथ की, एक ऐसे साथ की आवश्यकता होती है जो हमारे जीवन से उस अँधेरे को मिटा दे, हमारे जीवन में सुख की वृष्टि कर दे, अंधकार भरे पथ पर एक दीप जला दे, निराशा को आशा में बदलकर जीवन में रंग भर दे और अमावस में चाँदनी और कंपकंपाती ठंड में गुनगुनी धूप से नहला दे।

मैंने इस पुस्तक में अपनी रचनाओं से समझाने का प्रयास किया है कि सुख-दुःख धूप-छांव से होते हैं। कभी खुशियाँ द्वार पर दस्तक देती हैं तो कभी ग़म दबे पांव बिन आहट हमें घेर लेते हैं। और दुःख भरे समय में चलते-चलते यदि कुछ सत्य शिव सुंदर लगने लगे तो समझना चाहिए कि हमारे जीवन में एक टुकड़ा धूप अपनी आभा छोड़ गया है। मेरे जीवन में भी कई पहलू ऐसे आये जब मुझे निराशा का सामना करना पड़ा किन्तु उस निराशा में जब ज़रा भी दूर एक टिमटिमाती लौ नज़र आई, मैंने उसी विश्वास को अपना सहारा बना लिया तभी मेरा मार्ग प्रशस्त हुआ और यही रोशनी मेरे जीवन में चमकी बन "एक टुकड़ा धूप।"

"छुप कर व्योम में झांक रहा था जो
बदरी की ओट से जला गया एक दीप
आशा औ ' विश्वास का
वही टुकड़ा था एक धूप का
वही टुकड़ा था एक धूप का।"

नीरजा मेहता 'कमलिनी'

अनुक्रमणिका

1. एक टुकड़ा धूप	5
2. सत्य शिव सुंदर	6
3. आईना	7
4. देवदार	8
5. स्वर्ग-नर्क	9
6. आधी अधूरी ख़्वाहिशें	10
7. पहली मुस्कान	11
8. निर्वस्त्र	12
9. चाँद जब अपनी छत पर होगा	13
10.काश मिल जाता	14
11.पुस्तक का वही पन्ना	15
12.कौन हो तुम?	16

एक टुकड़ा धूप

आत्मा से दोहरे अस्तित्व के
झीने आवरण का परित्याग कर,
तुषार बूँद सा
पारदर्शक कोमल मन ले
चल पड़ी परब्रह्म की ओर,
विश्वास था
किसी बहुमूल्य रत्न सदृश
पा लूँगी उस क्षितिज को।

इस विश्वास के सहारे
चल पड़ी, दीखी मुझे
इंद्रधनुष के सतरंगों
सी सजी प्रकृति
नील गगन को स्पर्श करती,
आदित्य की रुपहली
किरणों सी चमकती,
मनोरम दृश्य से परिपूर्ण
सुहानी सुबह का
आवाहन करती सी प्रतीत होती।

मन में जागृत हुआ
शीतलता का भाव, शांति का एहसास,
मानों कैलाश पर्वत पर स्वयं शिव
अनन्य उपासना में लीन हों।
क्या देखती हूँ कि
आदित्य गगन में चमकता
संध्या होते ही अलसाया सा
भ्रमित सा अपनी प्रेयसी
धूप को तलाशता,
और धूप काले वस्त्रों में लिपटी
अपने प्रिय से मिलने
क्षितिज पर जा पहुँचती।

मिलन की आस में बैठे
दिनकर को चुपके से
अपने आगोश में समेट लेती
और मिलन का सुख भोगती,
आदित्य की गरमाहट
उसको शीतलता का
एहसास कराती
और वो चाँदनी बन
धरा को आलोकित करती।

इस डर से कि सृष्टि अंधकार में
विलीन न हो जाये
खुली हथेली पर
एक सुरक्षा कवच बना
मैंने बढाए कदम,
पर ये क्या? मैं स्वयं ही
क्षितिज में विलीन हो गयी,
समझ गयी, ये कुछ और नहीं
जीवन का सत्य है
और यही सत्य मेरे जीवन का
एक टुकड़ा धूप है

सत्य, शिव, सुंदर

मुझे अच्छे लगते हैं वो संबंध
जो क्षणभंगुर श्वासों में
जीवन दे जाते हैं,
मृत्यु पर्यन्त साथ रहते हैं,
जन्म मरण सदृश
धूप के टुकड़े से
सत्य शिव सुंदर होते हैं।

मुझे अच्छे लगते हैं वो संबंध
जो नफ़रत करते-करते
प्रेम दे जाते हैं,
ऐसा प्रेम वैमनस्य से दूर कर
सदा के लिए कटुता मिटा
धूप के टुकड़े जैसा
सत्य शिव सुंदर होता है।

मुझे अच्छे लगते हैं वो संबंध
जो पीड़ा से पनपते हैं,
वो अंतर्मन में बस जाते हैं
धमनियों में विचरण करते हैं
और मातृ की ममता समान
धूप के टुकड़े से
सत्य शिव सुंदर होते हैं।

मुझे अच्छे लगते हैं वो संबंध
जो बुझते हुए
दीये की लौ जैसे चमकते हैं,
उस लौ में आशा होती है
जो विश्वास सदृश
धूप के टुकड़े से
सत्य शिव सुंदर होते हैं।

मुझे अच्छे लगते हैं वो संबंध
जो कुरूपता में भीे
सौंदर्य बिखेरते हैं,
उसमें सादगी होती है
निर्मलता होती है जो नीर समान
धूप के टुकड़े जैसे
सत्य शिव सुंदर होते हैं।

मुझे अच्छे लगते हैं वो संबंध
जो छल में भी निश्छल हो जाते हैं,
उनमें चंचलता होती है
मासूमियत होती है
जो बाल मुस्कान सी
धूप के टुकड़े जैसी
सत्य शिव सुंदर होती है।

आईना

हाथ को आईना बना
चल दी मैं
कलयुग से सतयुग की ओर,
इस आईने में
कुछ अतीत की तस्वीरें उभरीं,
सत्य मुख पर आवरण डाल
कोने में दुबक कर रो रहा है,
उसकी दयनीय स्थिति
देख झूठ खिलखिला रहा है,
"मैं जीत गया"
यह सोच इतरा रहा है,
सत्य ने धीरे से आवरण हटाया
और बहुत सहजता से
झूठ को बेनकाब कर
दिखाया उसको अपना आईना।

आज मैंने पाया प्रवेश
कलयुग से सतयुग में
आज भी हाथ को आईना बना
देख रही हूँ कुछ भविष्य की तस्वीरें,
जीत हुई है सत्य की
झूठ अदृश्य हो गया है
किन्तु सत्य खिलखिला नहीं रहा,
उसने अपनी सीरत नहीं छोड़ी,
वो आज भी
नम्र है, शांत है, सहज है
उसे किसी
आईने की आवश्यकता नहीं
क्योंकि वो स्वयं में परिपूर्ण है।

काश मेरी फितरत
सत्य समान होती,
मुझे भी हाथ को आईना बना
भूत भविष्य नहीं देखना पड़ता,
पर अब मिल गया मुझे
आईने के रूप में
वो टुकड़ा धूप का
जिसने मेरी अंतर्रात्मा से
छुपे झूठ को निकाल फेंका है
और दिया है मुझे
एक निर्मल आईना।

देवदार

खुशनुमा जीवन का
एहसास दिलाते
वो पिरामिड आकार के
शंकुधारी पेड़ों जैसे तुम,

अधरची मेहंदी सी
अनोखी सुगंध सहित
लाली लिए
हरी हरी पत्तियों जैसी मैं,

तुमसे ही जीवन मेरा
तुमसे ही वर्ण मेरा
तुमसे ही सुरभित मैं,
तुमसे अलग होकर
अस्तित्वहीन हो

पतझड़ सदृश
धूल धूसरित हो
आज बिखरा है
जीवन मेरा,

क्या बचा पाओगे मुझे?
क्या दे पाओगे मुझे नवजीवन?
एक आशा के साथ
एक विश्वास के साथ

मेरी पुकार है जन जन से,
इन देवों के वृक्ष को
जिन्दा रखो जो देता है मुझे
वो धूप के टुकड़े समान
नवजीवन।

स्वर्ग-नर्क

गहन अँधेरी अमावस रात
उठाई गठरी और चलते-चलते
पहुँच गयी दूर निर्जन स्थल पर
जहाँ तरह-तरह के आकार देख
बढ़ गयी जिज्ञासा
और उनको करीब से देखने का
चढ़ गया फितूर,
कभी छूती तो हाथ न आते
पास जाती तो दूर हो जाते
ये कैसे थे साये, ये कैसे थे आकार
कभी दीखते, कभी लुप्त हो जाते
कभी निर्जीव तो कभी लगते साकार
भूत जैसे डरावने
मुझे लगा मैं नर्क में पहुँच गयी।

जिज्ञासावश आगे बढ़ती गयी
और उसी राह पर चलते चलते
पहुँची एक खूबसूरत
संगमरमर की मूर्ति निकट
जो नहाई थी दूधिया चाँदनी से
और चमक रही थी
अंधकार में प्रकाश बन,
आगे बढ़ी तो चाँद की किरणें
जल में थिरकती नज़र आईं,
स्वच्छ शीतल उपवन में
दीखने लगे विकसित सुरभित पुष्प,
अब डरावने साये नहीं
चमकते रूप नज़र आये,
मुझे लगा मैं स्वर्ग में पहुँच गयी।

अजीब कश्मकश में थी मैं
अमावस में चाँद की रोशनी ?
इस विरोधाभास में उलझी थी मैं
तभी अन्तस् से आवाज़ आई
"ये तेरा आत्मिक प्रकाश है
जाग उठ, मन की आँखें खोल
अपनी जिज्ञासा स्वयं शांत कर
"क्या नर्क है ? क्या स्वर्ग है ?"
मैं समझ गयी, जिज्ञासा शांत हुई
ये स्वर्ग नर्क कुछ नहीं
मेरे मन की सोच है,
जब नकारात्मक कल्पना की
सब बुरा ही दीखा
जब सोच हुई सकारात्मक
सब अच्छा ही दीखा,
सच, आज चलते-चलते
मिल गया धूप का टुकड़ा।

आधी अधूरी ख़्वाहिशें

हर ख़्वाहिश पूरी हो
ये ज़रूरी तो नहीं
और इन आधी अधूरी
ख़्वाहिशों की अपूर्णता से
जो दिल में कसक उठती है
वो मुझे बहुत सुखद लगती है।

ये मेरे मन के खालीपन को
अपने एहसासों से भर देती है,
मेरी कल्पनाओं को
मिल जाती है नई सोच,
कुछ पाने की चाहत
मेरी ख़्वाहिशों को
और तीव्र कर देती है
जिससे मुझे मिलती है जीने की
वज़ह,

क्योंकि कुछ पा लेने की चाह
कुछ कर गुज़रने की हद
जो मन में बनी रहती है
वो मन में हलचल मचाये रखती है,
वही मुझे अच्छी लगती है
और ये मुझे मिलती है
इन आधी अधूरी ख़्वाहिशों से।

ये आधी अधूरी ख़्वाहिशें
मीठी नींद सी होती हैं
अनूठे स्वप्न दिखाती हैं,
कभी धड़कनों को बढ़ाती हैं
कभी मायूसी में डुबो देती हैं,
ये एहसासों के घेरे में
मुझे कर लेती हैं क़ैद,
ये देती हैं मेरे मन को एक ऐसी
उड़ान

जिसमें कुछ पाने की
यदि छटपटाहट है
तो न मिल पाने की
कसमसाहट भी है,
और मन से यही उड़ान भरती
डूबती उतरती ये आधी अधूरी
ख़्वाहिशें
मेरे जीवन में धूप के टुकड़े सदृश
मेरी ज़िंदगी को दे जाती हैं
एक नया वितान।

पहली मुस्कान

मैं हूँ आज की नारी
जीती हूँ वर्तमान में
लेती हूँ सांस खुली हवा में
मुझे जीने की है तमन्ना
न कुचलो मुझे, न मसलो मुझे
मुझे भरनी है हर पल
एक नयी उड़ान
अजब सी जिज्ञासा
गगन समेटने की चाह
अपने लक्ष्य को करूँ तय
रुकूँ न मैं कहीं, झुकूँ न मैं कहीं
हिम्मत है मुझमें
हौसला भी है मुझमें
न रोको मुझे, न टोको मुझे
जीना नहीं बनके अबला मुझे
टिकना नहीं ज़मीं पे मुझे
हूँ जीवन की मैं सुनहरी सी बगिया
हर मंज़िल पे महके मेरे क़दमों के निशां
है निश्चल मेरा स्वच्छन्द मन
चमकती हूँ ऐसे जैसे पारसमणि
मैं निकली हूँ आज ढूँढने अपनी पहचान
रुपहली सी धूप पे जैसे वासंती बयार
मैं भारत माँ की हूँ पहली मुस्कान ।
मैं भारत माँ की हूँ पहली मुस्कान।।

निर्वस्त्र

नारी सदैव ही
पुरुष द्वारा
निर्वस्त्र होती आई है
राम ने सीता का
वन में त्याग कर
किया अपने मन से निर्वस्त्र,
भरी सभा में पाण्डवों ने
द्यूत क्रीड़ा में
द्रौपदी को दांव पर लगा
किया अपने अस्तित्व से निर्वस्त्र,
पुरुष ने कभी
नारी की संवेदना से खेला
कभी झूठे सब्ज़बाग दिखा
उसके विश्वास को छला,
कभी परम्पराओं का वास्ता दिया
कभी संबंधों की दुहाई दी,
कभी बन्द कमरे में
कभी झाड़ियों के पीछे
कभी निर्भया की तरह
सड़क चलती गाड़ियों में
हर बार, हाँ, हर बार
पुरुष से ठगी गयी नारी।
पर ऐ पुरुष ! अब तू दंभ न कर,
अब बारी है तेरी
नारी अब कमज़ोर अबला नहीं रही
उसने उठा लिए हैं अस्त्र,
खींच लाई है तुझे भरी सभा में
और कर दिया है
नग्न तेरी मानसिकता को,
ये जो कोने में
अत्याचार की पोटली है न,
खोल उसे और देख
मिलेंगे तुझे तेरे आत्मा रूपी वस्त्र
जिसमें पड़े हैं खून के धब्बे,
छुपकर रोई है तेरी आत्मा खून के
आँसू,
अब नारी को कमज़ोर मत समझ,
तूने तो सिर्फ नारी के शरीर को
उसके अस्तित्व को और उसके मन
को
किया था निर्वस्त्र
पर आज नारी को मिल गया है
वो टुकड़ा धूप का जिसने
किया है तेरी आत्मा को निर्वस्त्र।
हाँ, किया है तेरी आत्मा को
निर्वस्त्र।

चाँद जब अपनी छत पर होगा

शांत पड़ी ज़िन्दगी में
हलचल मचाती सी
तुम्हारी याद
ज्यों शांत झील में
गिरता जलप्रपात।

जल से छाई ज्यों
चहुँ और हरियाली
वैसे ही तुम्हारी याद
प्रसूनों की महक सदृश
जीवन में हरीतिमा लाई।

आज नहीं हो तुम
पर तुम्हारी याद
गिरते झरने की तरह
मन में कलकल करती है,
हसरतों को जगाती है

फिर और भी ज्यादा
अपेक्षाओं को बढ़ाती है,
ये देती है मुझे सुकून।
मत करो उपहास
मत छीनो ये अहसास,

ज्यों झरने का जल
समा जाता अपने ही जल में
वैसे ही मेरी हसरतों को
मेरी अपेक्षाओं को
रहने दो मेरे अंतर्मन में।

पर आज रात
"चाँद जब अपनी छत पर होगा"
मैं धीमे से पुकारूँगी तुम्हें,
बन धूप का टुकड़ा मेरे जीवन में
चले आना तुम दबे पाँव।

काश मिल जाता

आँख खुली जब इस दुनिया में
खुद को कन्या रूप में पाया
माँ कहती, है लक्ष्मी आई
पिता को बेटे की आस की छाया,
तरस गयी पाने को गोद
मुख देख मेरा, उनको भर जाता
क्रोध,
जन्मते ही क्यों नहीं किया मुझे
हवाले कूप
या काश मिल जाता, एक टुकड़ा
धूप।

रही तिरस्कृत जब हुई बड़ी
थी जीवन की अजब घड़ी,
पढ़ने में अव्वल मैं आती
पर पिता को एक आँख न भाती
दूर से ही मैं उन्हें निहारती
प्यार पिता का क्या होता, मैं नहीं
जानती,
जवां हुई, धीरे-धीरे निखरा रूप
काश मिल जाता, एक टुकड़ा धूप।

पिता प्रेम से रह गया था मन मेरा
रीता
फिर भी जला सकी न मन में
उस क्रूर पिता की चिता,
सब देख-देख माँ मेरी दुःख में डूबी
रहती
मेरी उदास आँखों को देख
खुद से लिपटा लेती,
अस्तित्व मेरा था ऐसा ज्यों कोने में
पड़ा हो सूप
काश मिल जाता, एक टुकड़ा धूप।

आई फिर वही घड़ी
दुल्हन बन मैं चल पड़ी
मन था लिपट पिता से रोऊँ
बरसों से वंचित प्यार लुटाऊँ
निभाई उन्होंने जो भी रीत
नहीं थी उसमें कोई प्रीत
सब कहते पाया बेटी ने पिता का
रूप
काश मिल जाता, एक टुकड़ा धूप।

थी डरी सहमी मैं जब पहुँची
ससुराल
रह गयी अचंभित,
ससुर ने चूम लिया जब भाल,
दिया आशीष फेर सर पर हाथ
ख़ुश्क पौधे के हरे हुए फिर पात,
लगा मुझे मैं बन गयी भूप
आज मिला मुझे, एक टुकड़ा धूप
आज मिला मुझे, एक टुकड़ा धूप।

पुस्तक का वही पन्ना

आज खुल गया पन्ना वही,
सहेज कर रखी थी जहाँ पंखुड़ी वही।

उन मुरझाई पंखुड़ियों में
आज भी तुम्हारी यादें ताज़ा हैं,
किताब में तुम और मुरझाये फूल
में तुम्हारे स्पर्श के अहसास ताज़ा हैं।

मुझे याद है तुम जब भी आते
एक गुलाब ले आते,
मैं सहेज कर रखती,
उसी में तुम्हारी खुशबू बसती।

बीते कई बरस पर बिखरी न यादें
ज्यों फूल से पंखुड़ी,
महकते हो आज भी मन में मेरे
ज्यों मृग में कस्तूरी।

शायद पहुँचे तुम तक भी खुशबू
और चले आओ ले फिर वही खुशबू,
सजाऊँगी मन में इसी आशा का स्वरूप
शायद दे जाओ फिर एक टुकड़ा धूप।

दूँगी आज फिर अरमानों को दस्तक
रखूँगी खुली आज फिर वही पुस्तक
रखूँगी खुली आज फिर वही पुस्तक।

कौन हो तुम?

तुम अनजान हो फिर भी
दिल के करीब लगते हो,
कौन हो तुम?
अपने हो या अजनबी हो!

तुम मेरे स्मृतियों में बसे
कभी सजीव,
कभी स्वप्न से लगते हो,
कौन हो तुम?
यथार्थ हो या काल्पनिक हो!

तुम मेरे दिल के कैनवास में
कभी हलचल मचाते से
तो कभी शांत लगते हो,
कौन हो तुम?
जीवंत हो या स्थिर हो!

तुम मेरे जीवन की डगर पर
कभी साये के रूप में
तो कभी सजीव नज़र आते हो,
कौन हो तुम?
परछाईं हो या स्वयं तुम हो!

तुम, जिसने धीमी आहट से
मेरे दिल पे अपने
प्रेम के निशां छोड़े हैं,
कौन हो तुम?
देह सहित हो या आत्मा हो!

तुम जिसके होने या न होने पर भी
कुछ होने का एहसास रहता है,
कौन हो तुम?
ईश्वरीय शक्ति हो या
आत्मिक आनंदानुभूति हो!

तुम जो अंतस से
सही राह दिखाता है
और बाहर अदृश्य रहता है,
चमक रहे हो
बन एक टुकड़ा धूप
कौन हो तुम?
सत्य हो या मृगतृष्णा हो!

व्यक्तित्व दर्पण

नाम - नीरजा मेहता 'कमलिनी'

जन्मतिथि - 24 दिसम्बर 1956

शैक्षिक योग्यता - एम.ए. (हिन्दी व संस्कृत), बी.एड., एल.एल.बी.

निवास स्थान - कौशम्बी गाज़ियाबाद (यू.पी.)

फोन नं. - 9654258770

मेल आई.डी. - mehta.neerja24@gmail.com

विधा - छंदमुक्त, गीत, मुक्तक, हाइकू, कहानी, लघुकथा, संस्मरण, लेख आदि

प्रकाशित एकल पुस्तकें (1) मन दर्पण (कविताएँ समीक्षा सहित) 2016
(2) नीरजा का आत्ममंथन (काव्य संग्रह) 2016
(3) उमंग (बाल काव्य संग्रह) 2017
(4) परछाइयाँ (संस्मरण) 2017
(5) सृजन समीक्षा (कविताएँ समीक्षा सहित) 2018
(6) ओस सी ज़िन्दगी (काव्य संग्रह) 2018
(7) हाँ, मैं ऐसी ही हूँ
(8) काश तुम समझ पाते
(9) खनक चूड़ियों की

प्रकाशित साक्षा संग्रह (1) 35 साझा काव्य संग्रह (2) 4 साझा कहानी संग्रह (3) 2 साझा लघु कथा संग्रह (4) 1 साझा लेख संग्रह (5) 1 साझा समीक्षा संग्रह (6) 2 परिचय संग्रह

पत्र पत्रिकाएं - 2008 से अब तक देश विदेश की अनेक पत्र-पत्रिकाओं व ई-पत्रिकाओं में लगभग 500 से अधिक रचनाएं प्रकाशित हो चुकी हैं और निरन्तर प्रकाशित होती रहती है।

सम्मान - साहित्य के क्षेत्र में योगदान के लिए विभिन्न संस्थाओं/समूहों द्वारा 2015 से अब तक लगभग 50 बार प्रशस्ति पत्र व स्मृति चिन्ह से सम्मानित।

जीवन का उद्देश्य - कड़ी मेहनत, सच्ची लगन औन अनुशासन ही मेरी पूँजी है, साहित्य सेवा ही मेरा सपना है और सादगी ही मेरा जीवन है।

न छीन पाआगे कभी, बेवजह ये पहल है
ये ईंटों का नहीं, मेरे ख़्वाबों का महल है ।

अन्तरा शब्दशक्ति
www.antrashabdshakti.com

१५, नेहरु चौक, मेन रोड वारासिवनी,
जि. बालाघाट (म.प्र.) पिन ४८१३३१,
संपर्क- ९४२४७६५२५९,
अणुडाक: antrashabdshakti@gmail.com

978-81-937811-5-9

मूल्य 40/-